Sangeet Galaxy: A Peer Reviewed e-Journal
Vol. 15, No.2 (July 2026) pp. 140-145
ISSN: 2319-9695 | www.sangeetgalaxy.co.in

भारतीय लोक संगीत का आधार स्तंभ: ढोलक का ऐतिहासिक, संरचनात्मक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण

[1]सूरज कुमार विश्वकर्मा (शोधार्थी)
डॉ० चन्दन विश्वकर्मा (शोध निर्देशक एवं असिस्टेंट प्रोफेसर)
वाद्य संगीत विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश
[1]Email: 095surajkumar@gmail.com

CC BY
OPEN ACCESS

सारांश

प्रस्तुत शोध लेख भारतीय लोक संगीत के सर्वाधिक लोकप्रिय एवं अपरिहार्य अवनद्ध वाद्य 'ढोलक' के ऐतिहासिक, संरचनात्मक और सांस्कृतिक पक्षों का व्यापक विश्लेषण करता है. प्राचीन 'पटह' से आधुनिक ढोलक तक के विकासवादी सफर को रेखांकित करते हुए यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि किस प्रकार इस वाद्य ने सदियों से अपनी मौलिकता को सुरक्षित रखा है. लेख में ढोलक के निर्माण में प्रयुक्त विशिष्ट काष्ठ (जैसे शीशम, आम, सागवान) और चर्म-शोधन की तकनीकी प्रक्रियाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है. साथ ही, वाद्य के तकनीकी अंगों जैसे 'मसाला' (लेप) और स्वर-नियोजन की प्रणालियों (डोरी-छल्ले बनाम नट-बोल्ट) के ध्वनि-विज्ञान पर पड़ने वाले प्रभाव की विवेचना की गई है. पुरातात्विक साक्ष्यों के रूप में पश्चिम बंगाल के टेराकोटा मंदिरों के चित्रणों का संदर्भ लेते हुए यह लेख ढोलक की प्राचीनता और सामाजिक व्यापकता को पुष्ट करता है. अंततः, यह शोध स्पष्ट करता है कि ढोलक केवल एक लोक वाद्य नहीं, बल्कि भारतीय संगीत के लोक एवं शास्त्रीय पक्षों के मध्य समन्वय स्थापित करने वाली एक महत्वपूर्ण धरोहर है.

मुख्य शब्द: ढोलक, अवनद्ध वाद्य, पटह, लोक संगीत, पुड़ी निर्माण, ताल-नियोजन

भूमिका:

भारतीय लोक संगीत की समृद्ध और विविधतापूर्ण परंपरा में ताल वाद्यों का स्थान सर्वोपरि रहा है. इन वाद्यों में 'ढोलक' न केवल सबसे लोकप्रिय है, बल्कि यह लोक संगीत की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है. शास्त्रीय वर्गीकरण के अनुसार, ढोलक एक 'अवनद्ध वाद्य' की श्रेणी में आता है, जिसका निर्माण खोखली लकड़ी के ऊपर जीव-चर्म को मढ़कर किया जाता है (कौशल कुमारी, पृ. 92; कर्मकार, 2025). यह वाद्य मुख्य रूप से लय को प्रदर्शित करने और ताल को मापने के लिए प्रयुक्त होता है, जो किसी भी संगीत रचना को आधार प्रदान करता है (कर्मकार, 2025).

ढोलक की व्यापकता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि यह उत्तर भारत के ग्रामीण अंचलों से लेकर महानगरीय भजनों और उत्सवों तक समान रूप से प्रचलित है. ब्रज और भोजपुरी लोक संस्कृतियों में तो इसे सर्वप्रथम और अपरिहार्य ताल वाद्य माना गया है (रावत, पृ. 141; भोजपुरी लोक संगीत..., 2009). अपनी सुरीली गूंज और सुगमता के कारण, यह वाद्य मृदंग और तबले जैसे जटिल वाद्यों के बीच एक सेतु का कार्य करता है. प्रस्तुत लेख में ढोलक के ऐतिहासिक विकास, इसकी निर्माण प्रक्रिया, तकनीकी विशेषताओं और विभिन्न क्षेत्रीय स्वरूपों का विस्तृत विश्लेषण किया जाएगा.

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य:

ढोलक का इतिहास भारतीय संगीत के प्राचीन और मध्यकालीन संक्रमण काल की एक महत्वपूर्ण कड़ी है. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित 'पटह' नामक वाद्य को आधुनिक ढोलक का पूर्वज माना जाता है. 'संगीत-पारिजात' जैसे शास्त्रीय ग्रंथों के अनुसार, "पटह ढोलक इति भाषायाम्", अर्थात भाषा में जिसे पटह कहा जाता है, वही ढोलक है (कौशल कुमारी, पृ. 92). मध्यकालीन संगीत शास्त्र के ग्रंथों, जैसे 'संगीतसार', में भी यह पुष्ट किया गया है कि प्राचीन युग का पटह ही मध्यकाल में ढोलक के रूप में विकसित हुआ. ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार, ढोलक की उपस्थिति बौद्ध काल से ही भारत में रही है, किंतु इसके स्वरूप और आकार में समय के साथ महत्वपूर्ण परिवर्तन आए. अमीर खुसरो के विवरणों से यह संकेत मिलता है कि 14वीं शताब्दी के दौरान इसके आकार में क्रमिक वृद्धि की गई, जिससे इसकी ध्वनि और वादन शैली में और अधिक गंभीरता समाहित हुई (वीर, 1983; कर्मकार, 2025).

ऐतिहासिक और पुरातात्विक दृष्टि से ढोलक की महत्ता केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह कला और वास्तुकला में भी जीवंत रूप से परिलक्षित होती है. पश्चिम बंगाल के ऐतिहासिक टेराकोटा मंदिरों की दीवारों पर ढोलक वादकों का अंकन प्रचुर मात्रा में मिलता है, जो इसकी प्राचीनता और सामाजिक स्वीकार्यता का प्रमाण है (कर्मकार, 2025). इन मंदिरों, जैसे हुगली के अनंत वासुदेव मंदिर (1679 ईस्वी) और बीरभूम के सुरुल मंदिरों में, देवताओं, पौराणिक पात्रों और सामान्य मनुष्यों को ढोलक बजाते हुए दिखाया गया है. यह साक्ष्य स्पष्ट करते हैं कि ढोलक केवल एक मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि धार्मिक अनुष्ठानों और सामुदायिक समारोहों का एक अभिन्न अंग रही है. समय के साथ, इस वाद्य ने अपनी संरचनात्मक सरलता को बनाए रखते हुए भी शास्त्रीयता के तत्वों को आत्मसात किया, जिससे यह आज भी भारतीय लोक जीवन का सबसे विश्वसनीय वाद्य बना हुआ है.

संरचना एवं निर्माण:

ढोलक की निर्माण प्रक्रिया अत्यंत श्रमसाध्य और कलात्मक है, जिसमें प्रकृति-जन्य सामग्रियों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाता है. इसका मुख्य आधार 'खोल' (shell) होता है, जो लकड़ी के एक ठोस टुकड़े को मशीन या हस्तशिल्प द्वारा भीतर से खोखला करके बनाया जाता है. निर्माण हेतु मुख्य रूप से सागवान, शीशम, आम, नीम, जामुन, बीजा, और खैर जैसी उत्तम लकड़ियों का चयन किया जाता है, जो वाद्य को स्थायित्व और विशिष्ट

प्रतिध्वनि प्रदान करती हैं (कौशल कुमारी, पृ. 92; रावत, पृ. 152; भोजपुरी लोक संगीत..., 2009). एक आदर्श ढोलक के खोल की लंबाई सामान्यतः 24 से 26 इंच के मध्य होती है. इसकी बनावट एक बेलनाकार पात्र जैसी होती है, जिसका मध्य भाग उभरा हुआ और दोनों मुख संकरे होते हैं. तकनीकी रूप से इसके दोनों सिरों के व्यास में अंतर रखा जाता है—दाहिने मुख (मादा) का व्यास प्रायः 7 से 9 इंच और बाएं मुख (नर) का व्यास 10 से 12 इंच तक रखा जाता है (रावत, पृ. 152). यह बनावट वाद्य के भीतर हवा के दबाव को नियंत्रित करने और ध्वनि की गंभीरता को बढ़ाने में सहायक होती है.

खोल तैयार होने के पश्चात इसके दोनों मुखों पर चमड़ा मढ़ने की प्रक्रिया आरंभ होती है, जिसे 'पुड़ी' कहा जाता है. पारंपरिक रूप से पुड़ी निर्माण के लिए बकरे की खाल को सर्वोत्तम माना जाता है, हालांकि आधुनिक समय में कुछ स्थानों पर पड़वा (भैंस के बच्चे) की खाल का भी प्रयोग किया जाने लगा है (रावत, पृ. 152). पुड़ी तैयार करने के लिए खाल के टुकड़ों को पानी में भिगोकर नरम किया जाता है और फिर चाकू से घिसकर उनकी मोटाई को संतुलित किया जाता है. यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि दाहिने मुख की पुड़ी को अपेक्षाकृत पतला रखा जाता है ताकि वहां से तीक्ष्ण और स्पष्ट ध्वनि निकले, जबकि बाएं मुख की पुड़ी को थोड़ा मोटा रखा जाता है ताकि 'घुमक' और गंभीर ध्वनि उत्पन्न हो सके (रावत, पृ. 152; मराठे, पृ. 142). इन पुड़ियों के किनारों पर बांस की खपच्ची (कौंडल) की सहायता से गजरों की बुनावट की जाती है, जो पुड़ी को खोल पर स्थिरता प्रदान करते हैं. अंततः, सूत या कपास की मजबूत डोरियों को इन गजरों में पिरोकर गोलाई में बांधा जाता है, जिससे वाद्य को उसका अंतिम स्वरूप प्राप्त होता है.

तकनीकी पक्ष एवं स्वर-नियोजन:

ढोलक की ध्वनि गुणवत्ता और उसकी गूंज काफी हद तक उसके तकनीकी पक्षों और स्वर-नियोजन की विधि पर निर्भर करती है. इस वाद्य का एक विशिष्ट तकनीकी अंग 'मसाला' कहलाता है. नर (बाएं) मुख की पुड़ी की भीतरी सतह पर राल और अन्य पदार्थों से निर्मित एक विशेष काला लेप वृत्त के आकार में लगाया जाता है. यह मसाला ही वह मुख्य कारक है जो बाएं मुख की ध्वनि को गंभीरता, भारीपन और दीर्घकालिक गूंज प्रदान करता है (कौशल कुमारी, पृ. 93). हालांकि, कुछ शास्त्रीय संदर्भों में मृदंग के विपरीत ढोलक के मुखों पर ऊपरी लेप न होने की बात भी कही गई है, किंतु व्यावहारिक लोक वादन में आंतरिक मसाले का प्रयोग अनिवार्य रूप से ध्वनि की मिठास और गहराई बढ़ाने के लिए किया जाता है (अग्रवाल, 2001). दाहिना मुख, जिसे 'मादा' कहा जाता है, ऊंचे स्वर पर स्थित रहता है, जबकि बायां मुख मंद या निम्न स्वर पर बोला जाता है, जिससे दोनों मुखों के बीच एक सुरीला संवाद स्थापित होता है (भोजपुरी लोक संगीत..., 2009).

स्वर-नियोजन या ट्यूनिंग के लिए ढोलक में दो प्रकार की प्रणालियाँ प्रचलित हैं. पारंपरिक प्रणाली में सूत या कपास की डोरियों का उपयोग होता है, जिसमें पीतल या लोहे के छल्ले (कड़ियाँ) पिरोई जाती हैं. इन छल्लों को ऊपर या नीचे खिसकाकर डोरियों के तनाव को घटाया या बढ़ाया जाता है, जिससे वाद्य का स्वर मिलाया जाता है (कौशल कुमारी, पृ. 93; अग्रवाल, 2001). आधुनिक काल में 'कलकतिया' या 'नट-बोल्ट' वाली ढोलक का

प्रचलन बढ़ा है. इसमें डोरियों के स्थान पर लोहे की पतली छड़ों के अंकुश बनाकर गजरों में अटका दिए जाते हैं और उन्हें नट-बोल्ट के माध्यम से कसा जाता है. यह प्रणाली वादक को अधिक स्थिरता और सुगमता से स्वर मिलाने की सुविधा प्रदान करती है (कौशल कुमारी, पृ. 93; रावत, पृ. 152). इन्ही तकनीकी विशेषताओं के कारण ढोलक को विभिन्न गायन शैलियों के अनुकूल ढाला जा सकता है.

वादन शैली एवं वर्ण:

ढोलक की वादन शैली इसकी बहुमुखी प्रतिभा का प्रमाण है, जो सरल लोक धुनों से लेकर शास्त्रीय संगीत की जटिलताओं तक को समाहित करने में सक्षम है. वादन के समय हाथों और उंगलियों की स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण होती है. ढोलक के प्रमुख वर्णों की निकास विधि को तकनीकी रूप से वर्गीकृत किया गया है. उदाहरण के लिए, दाहिने मुख पर तर्जनी उंगली के प्रहार से 'ता' और 'ना' जैसे शब्द निकलते हैं, जबकि बाएं मुख पर पूरी हथेली और उंगलियों के संयुक्त आघात से 'घ' या 'ग' की ध्वनि उत्पन्न होती है (रावत, पृ. 152). जब दोनों मुखों पर एक साथ प्रहार किया जाता है, तो 'धा' शब्द की उत्पत्ति होती है, जो ढोलक का मुख्य शब्द है और संगीत में 'सम' को दर्शाने का कार्य करता है. इसके अतिरिक्त, 'दीं', 'घ्घे' और 'खिर्र' जैसे विशिष्ट वर्णों के माध्यम से वादक ध्वनि में कंपन और आकर्षण पैदा करता है (रावत, पृ. 152).

दिलचस्प तथ्य यह है कि यद्यपि ढोलक एक लोक वाद्य है, किंतु एक कुशल वादक इस पर उन सभी शास्त्रीय बंदिशों, ठेकों, तोड़ों और मुरकियों का प्रदर्शन कर सकता है जो सामान्यतः तबले या मृदंग पर बजाई जाती हैं (कौशल कुमारी, पृ. 93). राग-रागिनियों के निर्धारित तालों को ढोलक की विशिष्ट शैली में ढालना वादक की रचनात्मकता पर निर्भर करता है. इसकी वादन शैली में लचीलापन ही इसे विभिन्न संगीत विधाओं के लिए अनुकूल बनाता है. जहाँ एक ओर यह भजन और कीर्तन में मधुर और शांत संगत प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर नौटंकी या आल्हा जैसे वीर रस के गायन में यह अत्यंत ओजस्वी और तीव्र ध्वनि उत्पन्न करती है.

क्षेत्रीय विविधता एवं सांस्कृतिक महत्व:

ढोलक की सांस्कृतिक व्याप्ति भारतीय समाज के हर स्तर पर देखी जा सकती है, जहाँ इसके आकार और वादन के उद्देश्य क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुसार बदलते रहते हैं. उत्तर प्रदेश और विशेष रूप से ब्रज क्षेत्र में, ढोलक को लोक संगीत का आधार स्तंभ माना जाता है. यहाँ विभिन्न लोक विधाओं के अनुसार ढोलक के विशिष्ट प्रकार प्रचलित हैं. उदाहरण के लिए, 'नौटंकी' में नक्कारे के साथ भारी और बड़ी ढोलक का प्रयोग होता है, जबकि जिकड़ी भजन और रसिया जैसे गायन के साथ 'मझोला' ढोलक का उपयोग किया जाता है (रावत, पृ. 152). आम लोकगीतों के लिए 'कलकतिया' ढोलक सर्वाधिक लोकप्रिय है, वहीं गीतों और भजनों में ढोलक के लघु रूप 'नाल' का प्रयोग किया जाता है, जो अपनी सुरीली चांटी के लिए जाना जाता है.

भोजपुरी लोक संगीत में भी ढोलक का स्थान अपरिहार्य है, जहाँ इसे आम, शीशम और जामुन जैसी स्थानीय लकड़ियों से तैयार किया जाता है (भोजपुरी लोक संगीत..., 2009). सांस्कृतिक रूप से ढोलक केवल एक वाद्य

नहीं, बल्कि सामुदायिक जुड़ाव का एक माध्यम है. यह सार्वजनिक सूचनाओं के प्रसार, उत्सवों, सामुदायिक लामबंदी और जुलूसों का नेतृत्व करने के लिए सदियों से उपयोग में लाई जा रही है (मित्र, 2007; कर्मकार, 2025). चाहे वह ग्रामीण परिवेश का 'आल्हा' गायन हो, 'स्वांग' हो या शहरी क्षेत्रों के कीर्तन, ढोलक अपनी लयबद्ध गूंज से परिवेश को जीवंत कर देती है. इसकी ध्वनि शक्ति और भव्यता इसे भारतीय लोक जीवन के हर संस्कार और उत्सव का अनिवार्य हिस्सा बनाती है.

निष्कर्ष:

ढोलक भारतीय संगीत परंपरा का एक ऐसा अनूठा वाद्य है, जिसने प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक अपनी प्रासंगिकता को न केवल बनाए रखा है, बल्कि उसे और अधिक विस्तार दिया है. ऐतिहासिक रूप से 'पटह' के रूप में जन्मा यह वाद्य आज अपनी सुगमता और मधुर ध्वनि के कारण विश्वभर में भारतीय लोक संस्कृति की पहचान बन चुका है. इसकी संरचनात्मक विशेषताओं, जैसे लकड़ी के खोल का चयन और पुड़ी निर्माण की विशिष्ट विधि, इसे अन्य ताल वाद्यों से पृथक करती हैं. तकनीकी रूप से 'मसाला' और 'नट-बोल्ट' जैसी प्रणालियों के समावेश ने इसके वादन को और अधिक स्पष्टता और स्थिरता प्रदान की है, जिससे यह लोक धुनों के साथ-साथ शास्त्रीय बंदिशों को भी सहजता से आत्मसात करने में सक्षम हो गया है.

सांस्कृतिक दृष्टि से ढोलक केवल एक वाद्य यंत्र नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता और सामुदायिक उत्सवों का प्रतीक है. ब्रज के 'रसिया' से लेकर भोजपुरी क्षेत्रों के लोकगीतों तक, ढोलक की लयबद्ध गूंज भारतीय जनमानस के उल्लास और भावनाओं को स्वर प्रदान करती है. वर्तमान में इसके स्वरूप में हो रहे तकनीकी परिवर्तन और डिजिटलीकरण की संभावनाओं ने इसके भविष्य को और भी सुरक्षित बना दिया है. संक्षेप में, ढोलक अपनी सरलता और शास्त्रीयता के अद्भुत समन्वय के कारण भारतीय संगीत की अमूल्य धरोहर है, जिसका संरक्षण और संवर्धन हमारी सांस्कृतिक निरंतरता के लिए अनिवार्य है.

संदर्भ सूची:

- अग्रवाल, डौली. (2001). *संगीत की संस्थागत शिक्षण प्रणाली (तबला वाद्य के विशिष्ट सन्दर्भ में विवेचनात्मक अध्ययन)* (अप्रकाशित पी-एच.डी. शोधप्रबंध). डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा.
- उपाध्याय, के. डी. *उत्तर प्रदेश के लोक संगीत में लय और ताल. लय और ताल* में (पृ. 38). संगीत नाटक अकादमी.
- कर्मकार, बी. (2025). *पश्चिम बंगाल के टेराकोटा मंदिरों की दीवारों पर पाए जाने वाले झिल्ली वाद्यों का अध्ययन*. स्वर सिंधु, 13(1), जनवरी–जून.
- कौशल कुमारी. *भारतीय लोक वाद्य* (पृ. 92–93).

- मराठे, म. भा. (1991). *ताल वाद्य शास्त्र* (पृ. 142). शर्मा पुस्तक सदन,पाटनकर बाजार, लशर ग्वालियर (मप्र).
- *भोजपुरी लोक संगीत में प्रयुक्त वाद्यों का विश्लेषण*. (2009). (अप्रकाशित एम.फिल. शोधकार्य). दिल्ली विश्वविद्यालय.
- रावत, निशा. *बृज लोक संगीत* (पृ. 141, 152).
- विश्वनाथन, पी. (2016). *वीणा और भारत के अन्य प्राचीन वाद्य यंत्र*. डॉल्स ऑफ इंडिया.
- वीर, आर. के. (1983). *भारत का संगीत* .